REG. NO. RAJHIN/2002/14707

उत्तमा वृत्तिस्तु कृषिकर्मैव

चोखी खेती

मई, 2026

भारत में डिजिटल कृषि पहल : वर्तमान परिदृश्य और भविष्य

प्रियंका चौधरी[1], अनिशा[1] और पुनिता धनकड[2]

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग आधी आबादी आज भी कृषि पर निर्भर है। बदलते समय के साथ कृषि क्षेत्र में तकनीकी हस्तक्षेप की आवश्यकता बढ़ी है। इसी दिशा में भारत सरकार ने डिजिटल तकनीकों को अपनाते हुए "डिजिटल कृषि" (Digital Agriculture) की दिशा में कई महत्वपूर्ण पहल की हैं। इन पहलों का उद्देश्य किसानों की आय बढ़ाना, कृषि उत्पादकता सुधारना और पारदर्शिता लाना है।

डिजिटल कृषि क्या है?

डिजिटल कृषि का अर्थ है कृषि में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT), आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), डेटा एनालिटिक्स, ड्रोन और मोबाइल ऐप्स का उपयोग करना। इससे खेती अधिक सटीक, प्रभावी और लाभदायक बनती है।

भारत में प्रमुख डिजिटल कृषि पहल

1. एग्रीस्टैक (AgriStack)

एग्रीस्टैक भारत सरकार की एक प्रमुख डिजिटल पहल है, जिसका उद्देश्य किसानों का एक एकीकृत डिजिटल डेटाबेस तैयार करना है।

इसमें किसानों की भूमि, फसल और बैंक जानकारी को जोड़ा जाता है।

प्रत्येक किसान को एक डिजिटल Farmer ID दी जाती है।

इससे सरकारी योजनाओं का लाभ सीधे किसानों तक पहुँचता है।

एग्रीस्टैक के माध्यम से किसान आसानी से सब्सिडी, फसल बीमा और ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

2. पीएम–किसान (PM&KISAN) और DBT प्रणाली

यह योजना डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से किसानों के बैंक खातों में सीधे धन हस्तांतरित करती है।

हर साल ₹6000 की सहायता सीधे खाते में जाती है।

इसमें डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (DBT) का उपयोग होता है, जिससे बिचौलियों की भूमिका समाप्त होती है।

3. डिजिटल क्रॉप सर्वे (Digital Crop Survey)

मोबाइल आधारित ऐप के जरिए फसलों का डेटा एकत्र किया जाता है।

यह जानकारी नीति निर्माण और योजना कार्यान्वयन में मदद करती है।

लाखों खेतों का डेटा डिजिटल रूप में संग्रहित किया जा चुका है।

4. कृषि निर्णय समर्थन प्रणाली (KD&SS)

यह प्रणाली उपग्रह डेटा, मौसम जानकारी और मिट्टी के आंकड़ों का उपयोग करके किसानों को सलाह देती है।

फसल उत्पादन का अनुमान

सूखा और बाढ़ की निगरानी

बेहतर खेती के निर्णय

5. ई–नाम (E-NAM)

यह एक ऑनलाइन कृषि बाजार प्लेटफॉर्म है।

किसान अपनी उपज देशभर में कहीं भी बेच सकते हैं।

इससे बेहतर मूल्य प्राप्त करने में मदद मिलती है।

6. भारत VISTAAR (AI आधारित पहल)

हाल ही में शुरू की गई यह पहल किसानों

1. विद्यावाचस्पति छात्रा (कृषि प्रसार एवं संचार विभाग) स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान–334006
2. विद्यावाचस्पति छात्रा (मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग) स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान–334006 ईमेल : pinkuchoudhary6628@gmail.com

को व्यक्तिगत सलाह (personalized advisory) देती है।
फसल, मौसम और बाजार की जानकारी
बहुभाषी AI सिस्टम
छोटे किसानों के लिए विशेष लाभ

डिजिटल कृषि के लाभ

1. पारदर्शिता और दक्षता
डिजिटल प्लेटफॉर्म से योजनाओं का लाभ सीधे किसानों तक पहुँचता है।

2. उत्पादन में वृद्धि
डेटा आधारित निर्णय लेने से फसल उत्पादन बढ़ता है।

3. किसानों की आय में सुधार
बाजार तक सीधी पहुँच और बेहतर कीमत मिलती है।

4. जानकारी की आसान उपलब्धता
मोबाइल ऐप्स के जरिए मौसम, बीज और उर्वरक की जानकारी मिलती है।

चुनौतियाँ

1. डिजिटल साक्षरता की कमी
कई किसान अभी भी तकनीक का उपयोग करने में सक्षम नहीं हैं।

2. इंटरनेट और इंफ्रास्ट्रक्चर
ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की कमी एक बड़ी समस्या है।

3. डेटा सुरक्षा और गोपनीयता
किसानों के डेटा के दुरुपयोग की चिंता भी बनी रहती है।

4. छोटे किसानों की भागीदारी
भारत में अधिकांश किसान छोटे और सीमांत हैं, जिनके लिए डिजिटल तकनीक अपनाना कठिन हो सकता है।

भविष्य की संभावनाएँ
भारत में डिजिटल कृषि का भविष्य उज्ज्वल है।
AI और मशीन लर्निंग का अधिक उपयोग
स्मार्ट खेती (Smart Farming) का विकास
ड्रोन और रोबोटिक्स का उपयोग
"स्मार्ट गांव" की अवधारणा का विस्तार
डिजिटल कृषि भारत को आत्मनिर्भर बनाने और किसानों की आय दोगुनी करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष
डिजिटल कृषि पहल भारत के कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला रही हैं। एग्रीस्टैक, ई–नाम, और AI आधारित प्रणालियाँ किसानों को सशक्त बना रही हैं। हालांकि कुछ चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, लेकिन सही नीति और प्रशिक्षण के माध्यम से भारत डिजिटल कृषि में विश्व का अग्रणी देश बन सकता है।

लेखक अपने आलेख
dee@raubikaner.org /
rajeshvermasct@gmail.com
पर हिन्दी फोन्ट कृतिदेव 10 में वर्ड फाईल व पीडीएफ दोनों में भिजवाने का श्रम करें।

AI और आधुनिक तकनीकों से मृदा विश्लेषण का बदलता स्वरूप

पुनिता धनकड[1] , अनिता धनकड[2] और प्रियंका चौधरी[3]

मृदा (Soil) कृषि का सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जो पौधों को पोषण, जल और सहारा प्रदान करता है। किसी भी देश की खाद्य सुरक्षा, आर्थिक विकास और पर्यावरण संतुलन काफी हद तक उसकी मृदा की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। लेकिन वर्तमान समय में अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों का उपयोग, जलवायु परिवर्तन, मृदा क्षरण (soil erosion) और असंतुलित खेती के कारण मिट्टी की गुणवत्ता तेजी से गिर रही है।

पारंपरिक मृदा परीक्षण विधियाँ मुख्यतः प्रयोगशालाओं पर आधारित होती हैं, जिनमें समय अधिक लगता है, लागत भी ज्यादा होती है और कई बार परिणाम किसानों तक समय पर नहीं पहुँच पाते। इससे किसानों को सही समय पर उर्वरक और सिंचाई से संबंधित निर्णय लेने में कठिनाई होती है।

ऐसे में Artificial Intelligence (AI) और डिजिटल तकनीकों का विकास मृदा परीक्षण के क्षेत्र में एक नई क्रांति के रूप में उभरा है। ये तकनीकें न केवल मृदा परीक्षण को तेज, सटीक और सुलभ बना रही हैं, बल्कि "स्मार्ट कृषि" (Smart Agriculture) और "प्रिसिजन फार्मिंग" (Precision Farming) को भी बढ़ावा दे रही हैं।

AI और डिजिटल तकनीकों की भूमिका

(क) Artificial Intelligence (AI) का योगदान

AI, विशेष रूप से मशीन लर्निंग (Machine Learning) और डीप लर्निंग (Deep Learning), मृदा परीक्षण को अधिक उन्नत और डेटा–आधारित बना रहे हैं। AI सिस्टम विभिन्न स्रोतों से डेटा एकत्र करता हैं। जैसे सेंसर डेटा, सैटेलाइट इमेज , मौसम डेटा और ऐतिहासिक कृषि डेटा - और उनका विश्लेषण करके सटीक परिणाम प्रदान करता है।

AI के प्रमुख उपयोग-

- **मृदा उर्वरता का विश्लेषण :** AI मॉडल मिट्टी के पोषक तत्वों का अनुमान लगाकर उर्वरता का स्तर बताते हैं।
- **फसल चयन (Crop Recommendation) :** मिट्टी के प्रकार और जलवायु के आधार पर उपयुक्त फसल का सुझाव देते हैं।
- **उर्वरक प्रबंधन :** सही मात्रा और समय पर उर्वरक उपयोग की सलाह देते हैं।
- **उत्पादन पूर्वानुमान (Yield Prediction) :** भविष्य में संभावित फसल उत्पादन का अनुमान लगाया जाता है।
- **रोग और समस्या पहचान :** मिट्टी से जुड़ी समस्याओं का समय रहते पता लगाया जा सकता है।

AI के कारण खेती में "अनुमान" की जगह "डेटा आधारित निर्णय" (Data–driven decision making) संभव हो गया है।

(ख) डिजिटल तकनीकों का विस्तृत उपयोग

AI के साथ मिलकर विभिन्न डिजिटल तकनीकें मृदा परीक्षण को अधिक प्रभावी बना रही हैं-

1. IoT (Internet of Things) और स्मार्ट सेंसर

IoT आधारित सेंसर खेतों में लगाए जाते हैं, जो लगातार मिट्टी की नमी (soil moisture), तापमान, pH स्तर, विद्युत चालकता (**EC**) और पोषक तत्वों को मापते हैं। यह डेटा रियल–टाइम में मोबाइल या कंप्यूटर पर उपलब्ध होता है।इससे किसान तुरंत सिंचाई और उर्वरक से संबंधित निर्णय ले सकते हैं।

2. मोबाइल एप्लीकेशन और डिजिटल प्लेटफॉर्म

आज कई मोबाइल ऐप्स उपलब्ध हैं जो मृदा परीक्षण को आसान बनाते हैं। किसान मिट्टी की जानकारी दर्ज करके या फोटो अपलोड करके तुरंत सुझाव प्राप्त कर सकते हैं। इससे विशेषज्ञों पर निर्भरता कम होती है और जानकारी आसानी से उपलब्ध होती है।

3. ड्रोन (Drone Technology)

1 विद्यावाचस्पति छात्रा (मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग) स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय,बीकानेर, राजस्थान–334006
2 स्नातकोत्तर छात्रा (शस्य विज्ञान विभाग) राजस्थान कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर ,महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान- 313001 3 विद्यावाचस्पति छात्रा (कृषि प्रसार एवं संचार विभाग) स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय,बीकानेर, राजस्थान–334006 Email – dhankarpunita@gmail.com

ड्रोन खेतों के ऊपर उड़कर उच्च–रिजॉल्यूशन इमेज और डेटा एकत्र करते हैं। इन इमेज का विश्लेषण करके मिट्टी की नमी, पोषक तत्वों की कमी और फसल की स्थिति का पता लगाया जाता है।बड़े खेतों और कठिन क्षेत्रों के लिए यह तकनीक अत्यंत उपयोगी है।

4. रिमोट सेंसिंग (Remote Sensing)

उपग्रह (satellite) से प्राप्त डेटा के माध्यम से बड़े क्षेत्रों की मिट्टी का विश्लेषण किया जाता है। इससे भूमि उपयोग, मृदा क्षरण, जल उपलब्धता और मरुस्थलीकरण जैसी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

5. GIS (Geographic Information System)

GIS तकनीक मृदा के स्थानिक (spatial) डेटा को मैप करती है। इससे विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टी की गुणवत्ता का नक्शा तैयार किया जाता है। यह सरकार और वैज्ञानिकों को बेहतर योजना बनाने में मदद करता है।

6. स्पेक्ट्रोस्कोपी (Spectroscopy)

यह एक आधुनिक तकनीक है जिसमें प्रकाश के माध्यम से मिट्टी के रासायनिक गुणों का विश्लेषण किया जाता है। यह विधि तेज, सटीक और कम समय में परिणाम देने वाली है।

7. क्लाउड कंप्यूटिंग (Cloud Computing)

मृदा से संबंधित डेटा को क्लाउड में स्टोर किया जाता है, जिससे इसे कहीं भी और कभी भी एक्सेस किया जा सकता है।इससे डेटा का सुरक्षित भंडारण और आसान साझा (sharing) संभव होता है।

8. प्रिसिजन एग्रीकल्चर (Precision Agriculture)

इस तकनीक में खेत के प्रत्येक भाग का अलग–अलग विश्लेषण किया जाता है और उसी के अनुसार संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इससे उर्वरक, पानी और बीज का सही उपयोग होता है और उत्पादन बढ़ता है।

AI और डिजिटल तकनीकों के लाभ (Advantages)

AI और डिजिटल तकनीकों के उपयोग से मृदा परीक्षण और कृषि में कई महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं-

- **तेजी और सटीकता :** परिणाम बहुत तेजी से और अधिक सटीकता के साथ प्राप्त होते हैं।
- **लागत में कमी :** उर्वरक, पानी और अन्य संसाधनों का सही उपयोग होने से खर्च कम होता है।
- **बेहतर निर्णय क्षमता :** किसान रियल–टाइम डेटा के आधार पर निर्णय ले सकते हैं।
- **उत्पादन में वृद्धि :** सही पोषण और प्रबंधन से फसल उत्पादन बढ़ता है।
- **पर्यावरण संरक्षण :** रासायनिक उर्वरकों और पानी का कम उपयोग होने से पर्यावरण सुरक्षित रहता है।
- **सतत कृषि (Sustainable Agriculture) :** यह तकनीक दीर्घकालिक रूप से कृषि को टिकाऊ बनाती है।
- **जोखिम में कमी :** मौसम और मिट्टी के डेटा के आधार पर जोखिम को कम किया जा सकता है।

सीमाएँ (Limitations)

हालांकि ये तकनीकें अत्यंत उपयोगी हैं, लेकिन इनके सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं-

- **उच्च प्रारंभिक लागत :** उपकरण और तकनीक महंगे होते हैं, जिससे छोटे किसानों के लिए इन्हें अपनाना कठिन हो सकता है।
- **डिजिटल साक्षरता की कमी :** ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की कमी एक बड़ी बाधा है।
- **इंटरनेट और बिजली की समस्या :** कई क्षेत्रों में नेटवर्क और बिजली की उपलब्धता सीमित है।
- **डेटा सुरक्षा और गोपनीयता :** डिजिटल डेटा को सुरक्षित रखना एक चुनौती है।
- **तकनीकी निर्भरता :** अत्यधिक तकनीक पर निर्भरता कभी–कभी जोखिम पैदा कर सकती है।
- **रखरखाव (Maintenance) :** उपकरणों के रखरखाव और मरम्मत में अतिरिक्त खर्च आता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

AI और डिजिटल तकनीकों ने मृदा परीक्षण के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। इन तकनीकों के माध्यम से मृदा की गुणवत्ता का सटीक और त्वरित विश्लेषण संभव हो गया है, जिससे कृषि अधिक वैज्ञानिक, लाभकारी और टिकाऊ बन रही है। हालांकि कुछ सीमाएँ अभी भी मौजूद हैं, लेकिन यदि सरकार, वैज्ञानिक संस्थाएँ और किसान मिलकर इन तकनीकों को अपनाते हैं, तो भविष्य में मृदा परीक्षण और भी सरल, सस्ता और प्रभावी हो जाएगा। इससे न केवल किसानों की आय में वृद्धि होगी, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित होगी। AI और डिजिटल तकनीकों ने मृदा परीक्षण के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। इन तकनीकों के माध्यम से मृदा की गुणवत्ता का सटीक और त्वरित विश्लेषण संभव हो गया है, जिससे कृषि अधिक वैज्ञानिक, लाभकारी और टिकाऊ बन रही है।

समेकित खेती प्रणाली : कृषि का नया भविष्य

कैलाश रानी[1], डॉ. उपेंद्र कुमार[2]

भारत की अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर है, लेकिन बढ़ती लागत, घटती उपज, मौसम की अनिश्चितता और छोटे खेतों के कारण किसानों की आय प्रभावित होती है। ऐसे समय में समेकित खेती प्रणाली (Integrated Farming System – IFS) एक नया और मजबूत विकल्प बनकर उभर रही है। यह प्रणाली खेती को बहुआयामी बनाती है, जहाँ फसल उत्पादन के साथदृसाथ पशुपालन, मत्स्यपालन, बागवानी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, वर्मी–कम्पोस्ट, कृषि–वानिकी आदि को एक साथ जोड़ा जाता है। इसका लक्ष्य है कम लागत में अधिक लाभ और सतत, सुरक्षित खेती।

समेकित खेती प्रणाली क्या है ?

समेकित खेती प्रणाली ऐसी कृषि पद्धति है जिसमें खेत और उससे जुड़े सभी संसाधनों–भूमि, पानी, पशु, पौधे एवं कृषि अपशिष्ट–का एक साथ और सर्वोत्तम उपयोग किया जाता है। इस प्रणाली में एक घटक से बनने वाला अपशिष्ट दूसरे घटक के लिए संसाधन का काम करता है।

उदाहरण :

– पशुओं का गोबर खेत की खाद बन जाता है।

– फसल अवशेष पशुओं के चारे के रूप में उपयोग होते हैं।

– तालाब का पोषक पानी सब्जियों और फलों के लिए खाद का काम करता है।

इस प्रकार यह प्रणाली एक चक्र (Cycle) बनाती है जो भूमि, पर्यावरण और किसान–तीनों के लिए लाभदायक है।

समेकित खेती प्रणाली के प्रमुख लाभ

1. आय के अनेक स्रोत

किसान केवल फसल पर निर्भर नहीं रहता। दुग्ध उत्पादन, शहद, मछली, सब्जियाँ, फल और मशरूम जैसे उत्पाद अलग–अलग आय देते हैं। इससे कुल आय 2 से 3 गुना तक बढ़ सकती है।

2. कृषि जोखिम में कमी

मौसम खराब हो या फसल में नुकसान हो तो अन्य गतिविधियों (पशुपालन, मत्स्यपालन आदि) से आय बनी रहती है। इससे किसान आर्थिक रूप से सुरक्षित रहता है।

3. लागत में कमी

– गोबर, कम्पोस्ट और बायोगैस स्लरी से रासायनिक खाद की आवश्यकता कम होती है।

– फसल अवशेष और खेत की घास पशुओं का चारा बन जाती है।

इससे कृषि लागत 40–50% तक घट सकती है।

4. मिट्टी की उर्वरता में सुधार

जैविक खाद और अपशिष्ट पुनर्चक्रण से मिट्टी में नमी, कार्बन और पोषक तत्व बढ़ते हैं। इससे उत्पादन स्थायी रूप से बढ़ता है और भूमि दीर्घकाल तक उपजाऊ रहती है।

5. पोषण सुरक्षा

एक ही खेत से दूध, दही, अंडे, सब्जियाँ, फल, मछली और अनाज मिलता है। इससे किसान परिवार का पोषण स्तर बेहतर होता है।

6. पर्यावरण संरक्षण

रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग कम होने से मिट्टी, पानी और पर्यावरण सुरक्षित रहता है। यह मॉडल जलवायु परिवर्तन के अनुकूल (Climate-Smart) भी माना जाता है।

7. छोटे किसानों के लिए वरदान

कम भूमि (1–2 एकड़) में भी किसान विविधता अपनाकर अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए यह प्रणाली सीमांत और लघु किसानों के लिए सबसे उपयुक्त है।

समेकित खेती प्रणाली के भविष्य में संभावित फायदे

1. टिकाऊ कृषि का आधार

IFS मिट्टी की सेहत सुधारकर दीर्घकाल तक उत्पादन सुनिश्चित करता है। बदलती जलवायु परिस्थितियों में यह मॉडल सबसे विश्वसनीय साबित हो रहा है।

2. ग्रामीण युवाओं के लिए अधिक रोजगार

मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, मछली पालन और पशुपालन जैसे क्षेत्र युवाओं के लिए नए रोजगार अवसर खोलते हैं।

3. किसान की आर्थिक स्थिरता

बहु–आय स्रोत होने से किसान बाजार की कीमतों और मौसम के उतार–चढ़ाव का सामना आसानी से कर सकता है।

4. खाद्य और पोषण सुरक्षा सुदृढ़

1. सहायक प्राध्यापक, एस. के कॉलेज जी वी संगरिया एवं 2. सहायक प्राध्यापक,कृषि महाविद्यालय हनुमानगढ़

IFS विविधता को बढ़ावा देता है, जिससे देश में खाद्यान्न, दूध, फल और सब्जियों की उपलब्धता बढ़ती है।

5. रसायन मुक्त और जैविक खेती को बढ़ावा

IFS प्राकृतिक खेती और जैविक खेती की ओर ले जाने वाला महत्वपूर्ण कदम है, जिससे उपभोक्ताओं को शुद्ध और सुरक्षित खाद्य मिलता है।

1 हेक्टेयर समेकित खेती प्रणाली मॉडल

भूमि का विभाजन (1 हेक्टेयर = 100%)

————————————————————

20%	40%	20%
पशु शेड (डेरी)	मुख्य फसल सहायक	फल बाग+सब्जी फसल

20%

तालाब+मछली पालन

मॉडल के घटक एवं लाभ

1 फसल उत्पादन : 40% भूमि

– धान, गेहूं, दलहन, तिलहन या नकदी फसल

– फसल अवशेष पशुओं को चारा

लाभरू मुख्य आय स्रोत. पशुपालन का खर्च घटता है

2 पशुपालन (डेयरी)–20% भूमि

– 2–4 गाय/भैंस

– गोबर से जैविक खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट

– गोबर गैस से चूल्हा/बिजली

लाभ :

✓ दूध से रोज आय

✓ खाद से खर्च कम

✓ खेत की मिट्टी बेहतर

3 सब्जी + फल बाग – 20%

– आम, अमरूद, पपीता, नींबू

– मौसमी सब्जियाँ

लाभ :

✓ परिवार का पोषण

✓ सालभर आय

✓ मधुमक्खियों को फूल

4 मछली पालन – 20% भूमि (तालाब)

– रोहू, कतला, मिगल

– तालाब किनारे बत्तख पालन भी संभव

लाभ :

✓ अतिरिक्त आय

✓ तालाब का पानी खेत में खाद के रूप में उपयोग

5 अतिरिक्त गतिविधियाँ (छोटी जगह में)

✓ मधुमक्खी पालन

✓ मशरूम उत्पादन

✓ बायोगैस यूनिट

✓ कम्पोस्ट/वर्मी कम्पोस्ट

लाभ :

✓ कम निवेश में अधिक मुनाफा

✓ खेत की उपज बढ़ती

✓ रसायनों का उपयोग घटता

पूरे सिस्टम का चक्र (IFS Cycle)

फसल अवशेष → पशु चारा

पशु गोबर → खाद. बायोगैस

खाद → मिट्टी की उर्वरता बढ़ाए

मछली तालाब → पोषक पानी + खेत

फूल/बाग → मधुमक्खी पालन से शहद

हर एक घटक दूसरे को सहारा देता है – यही समेकित खेती का असली फायदा है।

निष्कर्ष

समेकित खेती प्रणाली भारतीय कृषि को नई दिशा देने वाली क्रांतिकारी पद्धति है। यह न केवल किसान की आय बढ़ाती है, बल्कि कृषि को पर्यावरण–अनुकूल, टिकाऊ और लाभकारी बनाती है। बदलते समय में कृषि को सुरक्षित और भविष्य–उन्मुख बनाने के लिए समेकित खेती प्रणाली सबसे प्रभावी विकल्प है। यह प्रणाली किसान के खेत को एक उत्पादक, पोषक और आय–बहुल "कृषि परिवार" में बदल देती है।

वि.बी.जी.राम जी : एम.जी. नरेगा

डॉ. कोमल सिंह[1], डॉ. प्रसन्नलता आर्य[2]

भूमिका

भारत की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है, इसलिए ग्रामीण विकास देश की प्रगति का आधार माना जाता है। गांवों में बेरोजगारी, गरीबी, पलायन तथा आधारभूत सुविधाओं की कमी जैसी समस्याएँ लंबे समय से बनी हुई हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए सरकार ने समय–समय पर अनेक योजनाएँ प्रारंभ की हैं। मनरेगा योजना ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अब "वि. बि.जी. राम जी" को नए नरेगा के रूप में देखा जा रहा है, जो रोजगार के साथ–साथ ग्रामीण विकास, आत्मनिर्भरता और आधुनिक सुविधाओं को बढ़ावा देने का कार्य करेगी।

योजना का उद्देश्य

इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को उनके ही गांव में रोजगार उपलब्ध कराना है, ताकि उन्हें शहरों की ओर पलायन न करना पड़े। इसके साथ–साथ गांवों में विकास कार्यों को गति देना भी इसका प्रमुख लक्ष्य है।

मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

- ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करना।
- गांवों में सड़क, जल, बिजली जैसी सुविधाओं का विकास करना।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाना।
- महिलाओं और युवाओं को आत्मनिर्भर बनाना।
- पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना।

योजना के अंतर्गत किए जाने वाले कार्य

"वि.बि.जी. राम जी" योजना के अंतर्गत ऐसे कार्य किए जाएंगे, जिनसे गांवों का समग्र विकास हो सके।

मुख्य कार्य : 1. सड़क निर्माण एवं मरम्मत

गांवों को शहरों और बाजारों से जोड़ने के लिए सड़कों का निर्माण किया जाएगा।

2. जल संरक्षण कार्य

तालाब, कुएं, नहर, चेकडैम तथा वर्षा जल संचयन के कार्य किए जाएंगे।

3. वृक्षारोपण अभियान

पर्यावरण संरक्षण के लिए अधिक से अधिक पौधे लगाए जाएंगे।

4. भूमि सुधार कार्य

कृषि भूमि को उपजाऊ बनाने हेतु समतलीकरण तथा मिट्टी संरक्षण के कार्य होंगे।

5. सामुदायिक भवन निर्माण

पंचायत भवन, आंगनवाड़ी केंद्र, पशुशाला तथा अन्य सार्वजनिक भवन बनाए जाएंगे।

योजना की विशेषताएँ

1. पारदर्शिता और तकनीक का उपयोग

इस योजना में आधुनिक तकनीक का उपयोग किया जाएगा। मजदूरों की उपस्थिति ऑनलाइन दर्ज होगी और भुगतान सीधे बैंक खातों में भेजा जाएगा। इससे भ्रष्टाचार कम होगा और मजदूरों को समय पर मजदूरी मिलेगी।

2. स्थानीय स्तर पर रोजगार

गांव के लोगों को गांव में ही रोजगार मिलने से पलायन रुकेगा और परिवार साथ रह सकेंगे।

3. महिलाओं को प्राथमिकता

महिलाओं को कार्यस्थलों पर विशेष अवसर दिए जाएंगे, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी।

4. युवाओं के लिए अवसर

युवाओं को कौशल प्रशिक्षण देकर उन्हें रोजगार योग्य बनाया जाएगा।

ग्रामीण विकास में योगदान

यह योजना गांवों के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध होगी। सड़कों, जल संसाधनों और भवनों के निर्माण से ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार आएगा। कृषि कार्यों को लाभ मिलेगा और किसानों की आय बढ़ेगी।

महिलाओं और युवाओं पर प्रभाव

महिलाओं के लिए लाभ :

- आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ेगी।
- परिवार में निर्णय लेने की क्षमता बढ़ेगी।
- सम्मान और आत्मविश्वास में वृद्धि होगी।

युवाओं के लिए लाभ :

- रोजगार के नए अवसर मिलेंगे।
- कौशल विकास होगा।
- गांव में ही रोजगार मिलने से पलायन कम होगा।

पर्यावरण संरक्षण में भूमिका

इस योजना के अंतर्गत वृक्षारोपण, जल संरक्षण और भूमि सुधार जैसे कार्य किए जाएंगे, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होगा। इससे आने वाली पीढ़ियों को भी लाभ मिलेगा।

चुनौतियाँ

योजना को सफल बनाने के लिए कुछ चुनौतियों का समाधान आवश्यक है :

- कार्यों की सही निगरानी होना।
- समय पर मजदूरी भुगतान।
- भ्रष्टाचार पर नियंत्रण।
- सभी जरूरतमंद लोगों तक योजना का लाभ पहुंचाना।

निष्कर्ष : अंततः कहा जा सकता है कि "वि.बि.जी. राम जी" नया मनरेगा ग्रामीण भारत के लिए विकास और रोजगार का नया माध्यम बन सकता है। यह योजना गांवों में रोजगार, महिलाओं का सशक्तिकरण, युवाओं के विकास और पर्यावरण संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। यदि इसे ईमानदारी और सही तरीके से लागू किया जाए, तो यह योजना गांवों की तस्वीर बदल सकती है।

1. गेस्ट फैकल्टी लेक्चरार, (प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबन्धन), सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, 2 सह आचार्य, (प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबन्धन), सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

व्यवसायिक बटेर पालन में उचित पोषण प्रबंधन

पिंकी पूनिया[1], डॉ. शंकर लाल[2], डॉ. कुलदिप प्रकाश शिंदे[2], मंजू बोचलिया[1], मनीष कुमावत[1] एवं शीतल फोगाट[1]

बटेर पालन आज के समय में तेजी से उभरता हुआ एक लाभकारी व्यवसाय है, विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए। कम स्थान, कम लागत एवं कम समय में अधिक उत्पादन देने की क्षमता के कारण यह पारंपरिक मुर्गी पालन का एक उत्कृष्ट विकल्प बन चुका है। बटेर मुख्यतः अंडा एवं मांस उत्पादन के लिए पाला जाता है।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एशिया के विभिन्न देशों में बटेर पालन का विकास हुआ तथा धीरे–धीरे यह विश्व के अनेक भागों में फैल गया। भारत में भी पिछले कुछ दशकों में बटेर पालन ने विशेष लोकप्रियता प्राप्त की है। इसका मुख्य कारण यह है कि बटेर तीव्र वृद्धि दर के साथ शीघ्र परिपक्व हो जाता है तथा कम आयु में ही अंडा उत्पादन प्रारम्भ कर देता है। सामान्यतः बटेर 5 से 6 सप्ताह की आयु से अंडा देना शुरू कर देता है।

बटेर एक द्विउद्देशीय पक्षी है, जिसका पालन अंडा एवं मांस दोनों के उत्पादन के लिए किया जाता है। एक स्वस्थ बटेर वर्ष में लगभग 250 से 300 अंडे देता है, जो इसके छोटे आकार के बावजूद अत्यधिक उत्पादन है। बटेर के अंडे पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं तथा मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी माने जाते हैं। इसी प्रकार बटेर का मांस स्वादिष्ट, सुपाच्य एवं कम वसा एवं कोलेस्ट्रॉल युक्त होता है, जिसके कारण इसकी बाजार में मांग निरंतर बढ़ रही है।

बटेर पालन की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण आधार उचित पोषण प्रबंधन है। किसी भी पशु या पक्षी की उत्पादन क्षमता उसके पोषण स्तर पर निर्भर करती है। यदि बटेर को संतुलित एवं वैज्ञानिक आहार दिया जाए, तो उसकी वृद्धि दर, अंडा उत्पादन, प्रजनन क्षमता एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता में उल्लेखनीय सुधार होता है।

इसके विपरीत, पोषण असंतुलन से उत्पादन में कमी, रोगों का खतरा तथा आर्थिक हानि हो सकती है।

बटेर के जीवन को मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित किया जाता है

1. स्टार्टर चरण (0 से 3 सप्ताह)
2. ग्रोवर चरण (3 से 6 सप्ताह)
3. लेयर या उत्पादन चरण (6 सप्ताह के बाद)

बटेर के जीवन के प्रत्येक चरण में पोषक तत्वों की आवश्यकता अलग–अलग होती है। उदाहरण के लिए, प्रारंभिक चरण में अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है ताकि तेजी से वृद्धि हो सके, जबकि उत्पादन चरण में कैल्शियम और ऊर्जा की आवश्यकता अधिक होती है ताकि अंडों की गुणवत्ता और संख्या बेहतर हो। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि किसान प्रत्येक विकास चरण के अनुसार संतुलित आहार का उपयोग करें। आधुनिक बटेर पालन में वैज्ञानिक पोषण, गुणवत्तापूर्ण आहार, स्वच्छ पानी तथा उचित प्रबंधन तकनीकों का समुचित संयोजन ही उच्च उत्पादन और अधिक लाभ सुनिश्चित करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि बटेर के विभिन्न विकास एवं उत्पादन चरणों में पोषण प्रबंधन न केवल उत्पादन बढ़ाने का माध्यम है, बल्कि यह इस व्यवसाय को टिकाऊ, लाभकारी और सफल बनाने की आधारशिला भी है।

पोषण का महत्व

बटेर पालन में पोषण सबसे महत्वपूर्ण आधार है, क्योंकि यह सीधे तौर पर पक्षियों की वृद्धि, उत्पादन क्षमता, स्वास्थ्य और लाभ पर प्रभाव डालता है। यदि बटेर को संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण आहार दिया जाए, तो उसकी पूरी आनुवंशिक क्षमता का उपयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर, पोषण की कमी या असंतुलन से उत्पादन में कमी, रोगों का प्रकोप और आर्थिक नुकसान हो सकता है।

1. वृद्धि एवं शरीर विकास में भूमिका

उचित शारीरक विकास के लिए संतुलित पोषण का होना आवश्यक है। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, ऊर्जा एवं खनिज तत्वों होते है तो चूजों (छोटे बटेरों) कि वृद्धि दर सही रहती है एवं समय पर परिपक्व हो जाते हैं।

2. अंडा उत्पादन पर प्रभाव

संतुलित आहार बटेर में अंडा उत्पादन, अंडे का आकार और गुणवत्ता को प्रभावित करता है। कैल्शियम, फॉस्फोरस और प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा से अंडों का छिलका मजबूत बनता है और अंडों की संख्या भी अधिक होती है।

3. प्रजनन क्षमता

उचित पोषण से नर और मादा दोनों की प्रजनन क्षमता बढ़ती है। विटामिन (विशेषकर, डी, ई,) और आवश्यक फैटी एसिड्स भ्रूण के विकास तथा अंडों से चूजे निकलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4. रोग प्रतिरोधक क्षमता

विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर आहार बटेर की रोगों से लड़ने की क्षमता को मजबूत करता है। इससे मृत्यु दर कम होती है और दवाइयों पर खर्च भी घटता है।

5. उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार

उचित पोषण से बटेर के मांस और अंडों की गुणवत्ता बेहतर होती है। इससे बाजार में अच्छे दाम मिलते हैं और

1.स्नातकोत्तर छात्र, 2. सहायक प्राध्यापक, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, कृषि महाविधालय, बीकानेर
स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर–334006

उपभोक्ता संतुष्ट रहते हैं।

पोषण की कमी से बटेर बटेर कि उत्पादन क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव

बटेर पालन से अच्छा लाभ प्राप्त करने एवं उचित उत्पादन के लिए यदि आहार संतुलित नहीं होता या फिर किसी भी पोषक तत्व की कमी हो जाती है तो इसका सीधा प्रभाव वृद्धि, उत्पादन, स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता पर पड़ता है। पोषण की कमी लंबे समय तक बनी रहने पर गंभीर आर्थिक नुकसान भी हो सकता है।

पोषण की कमी से होने वाले मुख्य प्रभाव निम्न प्रकार है

1. वृद्धि में कमी
2. अंडा उत्पादन में कमी
3. अंडों की खराब गुणवत्ता
4. प्रजनन क्षमता में कमी
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी
6. पक्षी कि हड्डियों का कमजोर होना
7. पंखों और त्वचा की खराब स्थिति

उचित आहार प्रबंधन

बटेर पालन में कई बार पोषण संबंधी समस्याएँ सामने आती हैं, जो उत्पादन, स्वास्थ्य और लाभ को प्रभावित करती हैं। इन समस्याओं को सही समय पर पहचानकर उनका समाधान करना बहुत आवश्यक है।

1. **संतुलित आहार प्रबंधन**

कुल उत्पादन लागत का लगभग 65 से 75 प्रतिसत हिस्सा आहार पर खर्च होता है, जिससे किसानों का लाभ कम हो जाता है। कई किसान वैज्ञानिक तरीके से आहार नहीं बनाते, जिससे पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। इसके समाधान हेती निम्न बिन्दुओं पर हमेशा ध्यान देना चाहिए

- ❖ उर्जा कि पूर्ति हेतु स्थानीय और संतुलित आहार घटकों (मक्का/बाजरा, सोयाबीन एवं खालियां) का उपयोग करें
- ❖ फीड एडिटिव्स (एंजाइम, प्रोबायोटिक्स) का उपयोग करके फीड उपयोग दक्षता बढ़ाएं
- ❖ प्रोटीन, ऊर्जा, विटामिन और खनिज का सही संतुलन रखें
- ❖ पक्षिओं को नियमित रूप से फीड सप्लीमेंट दें
- ❖ लेयर चरण में 2.5 से 3 प्रतिसत तक कैल्शियम अवश्य दें
- ❖ कैल्शियमरू फॉस्फोरस अनुपात 1:1 से 2:1 रखें

पक्षिओं के लिए भा.कृ.अनु.प. नई दिल्ली के अनुसार संतुलित आहार सारणी

पोषक तत्व	स्टार्टर चरण (0 से 3 सप्ताह)	ग्रोवर चरण (3 से 6 सप्ताह)	लेयर (6 सप्ताह के बाद)
क्रूड (कच्चा) प्रोटीन (%)	24-26	20-22	18-20
चयापचयी ऊर्जा (कि. कैलोरी /किग्रा)	2800-2900	2700-2800	2700-2800
कैल्शियम (%)	1.0	0.8-1.0	2.5-3.0
फॉस्फोरस (%)	0.5	0.45	0.45
लाइसिन (%)	1.3	1.0	0.9
मेथियोनीन (%)	0.5	0.45	0.4

2. पानी का प्रबंधन

किसी भी पशु या पक्षी के उत्पादन पर जल (पानी) स्वच्छ एवं ताजा नहीं होने पर उसकी वृद्धि के साथ साथ उत्पादन भी प्रभावित होता है एवं रोग और बिमारियों का प्रकोप भी अधिक बढ़ता है। इसीलिए बटेर पालन में पानी कि व्यवस्था हेतु निम्न लिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

- हमेशा साफ और ताजा पानी उपलब्ध कराए
- गर्मी के समय दिन में दो से तीन बार पानी बदलें
- पानी के बर्तनों की नियमित सफाई करें
- गर्मी में इलेक्ट्रोलाइट्स मिलाएं

3. गर्मी से राहत

तापमान में अधिक वृद्धि के कारण पक्षी तनाव कि स्थिति में आ जाते है जिससे उनका सम्पूर्ण उत्पादन प्रभावित होता है इसके साथ साथ पक्षिओं कि आहार ग्रहण क्षमता भी प्रभावित होती है। इसीलिए गर्मी के समय में निम्न लिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

- पक्षिओं का शेड हमेशां हवादार एवं खुला होना चाहिए
- पक्षिओं के लिए शेड में हमेशा ठंडा और पर्याप्त पानी उपलब्ध करवाएं
- अधिक गर्मी के समय में पानी के साथ विटामिन सी और इलेक्ट्रोलाइट्स का उपयोग करने पर बेहतर परिणाम मिलते है

निष्कर्ष

उचित पोषण प्रबंधन बटेर पालन की सफलता की कुंजी है। वैज्ञानिक आहार एवं प्रबंधन अपनाकर किसान उत्पादन बढ़ा सकते हैं तथा इस व्यवसाय को लाभकारी एवं टिकाऊ बना सकते हैं।

पत्रिका में प्रकाशित आलेख/ विचार लेखकों के अपने हैं।

अर्ध-शुष्क राजस्थान में संरक्षण कृषि : टिकाऊ कृषि की दिशा में एक दृष्टिकोण

डॉ. जसवीर सिंह और सुनील कुमार शर्मा

राजस्थान का बड़ा भाग अर्ध–शुष्क जलवायु क्षेत्र में आता है, जहाँ वर्षा अल्प, अनियमित एवं असमान होती है। मिट्टी की जलधारण क्षमता कम, तापमान अधिक तथा वाष्पोत्सर्जन की दर तेज होने के कारण कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। परंपरागत खेती प्रणालियाँ मृदा क्षरण, नमी ह्रास और भूमि की उर्वरता में गिरावट का कारण बन रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में संरक्षण कृषि क टिकाऊ एवं लाभकारी विकल्प के रूप में उभर रही है।

संरक्षण कृषि का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए उत्पादन लागत कम करना, मृदा स्वास्थ्य सुधारना तथा जल उपयोग दक्षता बढ़ाना है।

संरक्षण कृषि के प्रमुख सिद्धांत

न्यूनतम जुताई

- भूमि की बार–बार जुताई से मिट्टी की संरचना बिगड़ती है।
- न्यूनतम जुताई से मृदा नमी बनी रहती है।
- ईंधन, श्रम एवं समय की बचत होती है।
- मृदा जीवों की सक्रियता बढ़ती है।

फसल अवशेष प्रबंधन

- कटाई के बाद फसल अवशेषों को खेत में बनाए रखना।
- मिट्टी को तापमान से सुरक्षा मिलती है।
- नमी संरक्षण होता है तथा खरपतवार कम उगते हैं।
- जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है।

फसल चक्र एवं विविधीकरण

- दलहन, तिलहन एवं मोटे अनाज का समावेश।
- मृदा उर्वरता में सुधार।
- कीट एवं रोग प्रकोप में कमी।
- जोखिम प्रबंधन में सहायता।

अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में संरक्षण कृषि के लाभ

- जल संरक्षण एवं नमी संधारण में वृद्धि।
- मृदा क्षरण में कमी।
- उत्पादन लागत में कमी।
- जैविक पदार्थ एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार।
- कार्बन संचयन बढ़ने से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव कम होते हैं।
- फसल उत्पादकता एवं किसान आय में वृद्धि।

राजस्थान में उपयुक्त संरक्षण कृषि तकनीकें

- शून्य जुताई तकनीक
- मल्चिंग (फसल अवशेष, प्लास्टिक या जैव मल्व)

ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई

- वर्षा जल संचयन एवं कंटूर फार्मिंग
- अंतरवर्तीय खेती एवं मिश्रित फसल प्रणाली
- जैविक खाद एवं हरी खाद का प्रयोग

चुनौतियाँ

- किसानों में तकनीकी जानकारी की कमी।
- प्रारंभिक यंत्रों की लागत अधिक।
- अवशेष प्रबंधन में कठिनाई।
- पशुओं द्वारा अवशेषों का चराई दबाव।
- स्थानीय स्तर पर मशीनों की उपलब्धता सीमित।

संरक्षण कृषि की अवधारणा, परिभाषा एवं विकास

संरक्षण कृषि का अर्थ

संरक्षण कृषिएक ऐसी वैज्ञानिक कृषि प्रणाली है जिसका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए टिकाऊ उत्पादन सुनिश्चित करना है। इसमें मृदा, जल, जैव विविधता और ऊर्जा संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाता है, ताकि वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ भविष्य की पीढ़ियों के लिए संसाधनों की उपलब्धता बनी रहे। परंपरागत खेती में बार–बार जुताई, फसल अवशेषों को जलाना, अत्यधिक सिंचाई और रासायनिक इनपुट का प्रयोग आम बात रही है, जिससे मिट्टी की संरचना कमजोर होती है, जैविक कार्बन घटता है और मृदा क्षरण बढ़ता है। इसके विपरीत संरक्षण कृषि ऐसी पद्धति है जो प्रकृति के अनुकूल कार्य करती है और मिट्टी को जीवित प्रणाली के रूप में देखती है।

संरक्षण कृषि केवल तकनीक नहीं, बल्कि एक दर्शन (चिपसवेवचील व थ्िंतउपदह) है, जिसमें किसान प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर उत्पादन करता है। इसका मूल उद्देश्य उत्पादन लागत घटाना, संसाधनों का संरक्षण करना, जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करना तथा किसानों की आय को स्थिर बनाना है।

संरक्षण कृषि संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार "संरक्षण कृषि एक ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें न्यूनतम मृदा छेड़छाड़, स्थायी मृदा आवरण तथा फसल विविधीकरण के माध्यम से मृदा स्वास्थ्य, जल दक्षता एवं जैव विविधता में सुधार किया जाता है।"

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (प्ब्।त्) के अनुसार, संरक्षण कृषि वह पद्धति है जिसमें खेत की प्राकृतिक संरचना को बनाए रखते हुए उत्पादन प्राप्त किया जाता है तथा भूमि क्षरण को न्यूनतम

स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

किया जाता है।

संरक्षण कृषि **तीन मूलभूत** स्तंभों पर आधारित है

- न्यूनतम जुताई
- स्थायी मृदा आवरण
- फसल विविधीकरण

भारत में संरक्षण कृषि का परिदृश्य

भारत में संरक्षण कृषि का विस्तार धीरे–धीरे हो रहा है। प्रमुख रूप से पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान में इसके प्रयोग बढ़ रहे हैं।

भारत में संरक्षण कृषि के प्रमुख लाभ

- ईंधन एवं श्रम लागत में कमी
- जल संरक्षण
- समय पर बुवाई
- मृदा स्वास्थ्य में सुधार
- पराली जलाने की समस्या में कमी

हालाँकि, छोटे जोत वाले किसानों के लिए मशीनरी की उपलब्धता और प्रारंभिक लागत अभी भी चुनौती बनी हुई है।

संरक्षण कृषि और जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, अनियमित वर्षा, तापमान वृद्धि और चरम मौसमी घटनाएँ बढ़ रही हैं। संरक्षण कृषि ऐसी परिस्थितियों में कृषि को जलवायु–सहनीय बनाती है। मृदा में कार्बन संचयन से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम होता है। मल्चिंग से मिट्टी का तापमान नियंत्रित रहता है और नमी बनी रहती है। फसल विविधीकरण से जोखिम कम होता है।

संरक्षण कृषि का सामाजिक एवं आर्थिक महत्व

संरक्षण कृषि केवल पर्यावरणीय लाभ तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी व्यापक है।

किसानों की उत्पादन लागत घटती है। आय स्थिर होती है, ग्रामीण रोजगार के अवसर बढ़ते है, संसाधन आधारित संघर्ष कम होते हैं। विशेषकर राजस्थान जैसे अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में यह किसानों के जीवन स्तर में सुधार का महत्वपूर्ण साधन बन सकती है।

संरक्षण कृषि आधुनिक कृषि की आवश्यकता बन चुकी है। यह प्रणाली न केवल संसाधनों का संरक्षण करती है, बल्कि उत्पादन स्थिरता, पर्यावरण सुरक्षा और सामाजिक कल्याण को भी सुनिश्चित करती है। अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में इसकी भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

राजस्थान का अर्ध–शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र भौगोलिक, जलवायु, मृदा एवं सामाजिक परिदृश्य

भौगोलिक विस्तार एवं स्थिति

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जिसका लगभग 60–65 प्रतिशत क्षेत्रफल अर्ध–शुष्क एवं शुष्क जलवायु क्षेत्र में आता है। राज्य का पश्चिमी और उत्तर–पश्चिमी भाग कृ जिसमें बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, चूरू, नागौर, श्रीगंगानगर एवं हनुमानगढ़ जैसे जिले शामिल हैं कृ मुख्यतः थार मरुस्थल क्षेत्र में स्थित है। यह क्षेत्र उत्तर में पंजाब, पश्चिम में पाकिस्तान, पूर्व में हरियाणा और दक्षिण में गुजरात से सीमाबद्ध है।

अरावली पर्वतमाला राज्य को दो प्रमुख जलवायु भागों में विभाजित करती है। अरावली के पश्चिमी भाग में वर्षा अत्यंत कम होती है और तापमान अत्यधिक रहता है, जबकि पूर्वी भाग अपेक्षाकृत आर्द्र है। अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की भौगोलिक बनावट रेतीली मैदानों, बालू के टीलों, क्षारीय भूमि और सीमित जल संसाधनों से युक्त है। भूमि की सतह असमान होने के कारण जल बहाव तीव्र होता है और मृदा अपरदन की समस्या बनी रहती है। प्राकृतिक वनस्पति झाड़ीदार, कांटेदार एवं सूखा सहनशील होती है, जो पशुपालन का प्रमुख आधार है।

जलवायु विशेषताएँ

अर्ध–शुष्क राजस्थान की जलवायु अत्यंत विषम एवं चुनौतीपूर्ण है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में तापमान 45–48 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है, जबकि शीत ऋतु में कई स्थानों पर तापमान 0 डिग्री सेल्सियस के आसपास गिर जाता है।

औसत वार्षिक वर्षा 150 से 400 मिमी के बीच होती है, जो अत्यंत अनियमित और असमान होती है। अधिकांश वर्षा जुलाई से सितंबर के बीच दक्षिण–पश्चिम मानसून के दौरान होती है। कई वर्षों में सूखा पड़ना सामान्य बात है, जिससे फसल उत्पादन में भारी अनिश्चितता रहती है।

तेज गर्म हवाएँ (लू), धूल भरी आँधियाँ और वाष्पोत्सर्जन की उच्च दर मिट्टी की नमी को शीघ्र समाप्त कर देती हैं। यही कारण है कि जल संरक्षण तकनीकों की आवश्यकता इस क्षेत्र में अत्यधिक बढ़ जाती है।

मृदा प्रकार एवं उनकी विशेषताएँ

अर्ध–शुष्क राजस्थान में मुख्यतः निम्नलिखित मृदा प्रकार पाए जाते हैं

रेतीली मिट्टी

- जल धारण क्षमता बहुत कम
- जैविक पदार्थ की कमी
- पोषक तत्वों का शीघ्र अपक्षय
- वायु अपरदन की अधिक संभावना

दोमट एवं बलुई दोमट मिट्टी

- मध्यम जल धारण क्षमता
- अपेक्षाकृत उपजाऊ
- उचित प्रबंधन से अच्छी उत्पादकता संभव
- लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी
- पौधों की वृद्धि में बाधा
- विशेष सुधार तकनीकों की आवश्यकता

सामान्यतः इन मिट्टियों में जैविक कार्बन की मात्रा 0.2–0.4% के बीच होती है, जो कृषि उत्पादन के लिए अपर्याप्त मानी जाती है।

जल संसाधन एवं सिंचाई स्थिति

राजस्थान में सतही जल संसाधन अत्यंत सीमित हैं। अधिकांश नदियाँ मौसमी हैं और मानसून के बाद सूख जाती हैं। भूजल मुख्य सिंचाई स्रोत है, किंतु निरंतर दोहन से जलस्तर गिर रहा है तथा खारापन बढ़ रहा है। इंदिरा गांधी नहर परियोजना ने उत्तरी राजस्थान में सिंचाई विस्तार किया है, किंतु पश्चिमी क्षेत्रों में अभी भी जल संकट गंभीर बना हुआ है। वर्षा जल संचयन संरचनाएँ, टांके, नाड़ी, कुंड और खडीन पारंपरिक जल संरक्षण प्रणालियाँ हैं।

प्रमुख फसल प्रणालियाँ

अर्ध–शुष्क राजस्थान में प्रमुखतः निम्न फसलें उगाई जाती हैं :

बाजरा, मूंग, ग्वार, तिल, मोठ, रबी, गेहूं, चना, सरसों, जीरा, इसबगोल, बागवानी, अनार, बेर, खजूर, सब्जियाँ, चारा फसले, ज्वार, बरसीम, लोबिया फसल उत्पादन मुख्यतः वर्षा पर निर्भर होता है। सिंचित क्षेत्र सीमित है।

पशुपालन एवं आजीविका प्रणाली

राजस्थान में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। ऊँट, भेड़, बकरी और गाय प्रमुख पशुधन हैं। चरागाह भूमि सीमित होने के कारण अत्यधिक चराई से भूमि क्षरण बढ़ रहा है। फसल अवशेष पशुओं का मुख्य आहार हैं, जिससे संरक्षण कृषि में अवशेष प्रबंधन चुनौती बन जाता है।

संरक्षण कृषि के सिद्धांत एवं वैज्ञानिक आधार

संरक्षण कृषि एक आधुनिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित सतत कृषि उत्पादन प्रणाली है, जिसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों दृ विशेषकर मिट्टी, जल और जैव विविधता का संरक्षण करते हुए कृषि उत्पादकता को बनाए रखना और बढ़ाना है। यह प्रणाली प्रकृति के जैविक संतुलन की नकल करती है, जहाँ मिट्टी हमेशा ढकी रहती है, सूक्ष्मजीव सक्रिय रहते हैं और भूमि का अत्यधिक दोहन नहीं होता। संरक्षण कृषि के तीन प्रमुख सिद्धांत हैं दृ न्यूनतम जुताई या न्यूनतम मिट्टी व्यवधान, स्थायी मिट्टी आवरण तथा फसल विविधीकरण। इन सिद्धांतों के पालन से मिट्टी की संरचना मजबूत होती है, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जल अवशोषण बेहतर होता है और मृदा क्षरण में कमी आती है। साथ ही यह प्रणाली पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक है।

राजस्थान की भौगोलिक एवं जलवायु परिस्थितियाँ संरक्षण कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती हैं। राज्य का बड़ा भाग शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्र में स्थित है, जहाँ वर्षा कम, अनियमित तथा मिट्टी की जल धारण क्षमता कम होती है। पश्चिमी राजस्थान में रेतीली मिट्टी और तेज हवाओं के कारण वायु अपरदन अधिक होता है, जबकि दक्षिण–पूर्वी भागों में तीव्र वर्षा के कारण जल अपरदन गंभीर समस्या है। भूजल स्तर में निरंतर गिरावट और सूखे की बढ़ती घटनाएँ कृषि उत्पादन को अस्थिर बनाती हैं। ऐसे में संरक्षण कृषि तकनीकें मिट्टी में नमी बनाए रखने, वर्षा जल संचयन, कटाव नियंत्रण और जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिससे किसानों को स्थिर उत्पादन प्राप्त होता है।

भारत में संरक्षण कृषि का विकास धीरे–धीरे हुआ है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में शून्य जुताई आधारित गेहूं की खेती विशेष रूप से सफल रही है। राजस्थान में भी पारंपरिक तीव्र जुताई प्रणाली अब कम या शून्य जुताई की ओर बढ़ रही है। संरक्षण कृषि अपनाने से ईंधन, श्रम और मशीनरी लागत में कमी आती है, मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता में सुधार होता है तथा खरपतवार और रोग प्रबंधन में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, मिट्टी में कार्बन संचयन बढ़ने से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम होता है और कृषि प्रणाली जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सहनशील बनती है। विभिन्न अध्ययनों में उत्पादन और उत्पादकता में 4-10 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गई है।

हालाँकि संरक्षण कृषि के व्यापक प्रसार में कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। छोटे और मध्यम किसानों के लिए उपयुक्त बीज बोने की मशीनों की कमी, फसल अवशेषों का पशु आहार या ईंधन के रूप में उपयोग, अवशेष जलाने की प्रवृत्ति, तकनीकी ज्ञान की कमी तथा प्रशिक्षित मानव संसाधनों का अभाव प्रमुख बाधाएँ हैं। इसके अलावा संरक्षण कृषि प्रणाली साइट–विशिष्ट होती है, इसलिए प्रत्येक क्षेत्र के अनुसार तकनीकों का अनुकूलन आवश्यक होता है। वैज्ञानिकों, किसानों, विस्तार अधिकारियों और नीति निर्माताओं के बीच समन्वय और सहभागिता के बिना इसका सफल क्रियान्वयन संभव नहीं है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संरक्षण कृषि केवल उत्पादन बढ़ाने की तकनीक नहीं, बल्कि संसाधन संरक्षण, पर्यावरण संतुलन और आर्थिक स्थिरता की दिशा में एक समग्र समाधान है। यदि उचित नीतिगत समर्थन, सब्सिडी, मशीनरी की उपलब्धता, प्रशिक्षण कार्यक्रम, अनुसंधान एवं तकनीकी नवाचार को प्रोत्साहन दिया जाए, तो राजस्थान जैसे शुष्क क्षेत्रों में कृषि को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और जलवायु–संवेदनशील बनाया जा सकता है। यह प्रणाली आने वाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखने में भी महत्वपूर्ण योगदान देगी।

जायद में लोबिया व मूंग की खेती: शुष्क क्षेत्रों के लिए लाभकारी विकल्प

अमन[1], कपिल बिश्नोई[1], पी. सी. गुप्ता[2] और सुजीत कुमार यादव[2]

भारत में ज़ायद मौसम को सामान्यतः खेती के लिए कठिन काल माना जाता है, क्योंकि इस अवधि में तापमान अत्यधिक होता है तथा सिंचाई जल की उपलब्धता सीमित रहती है। विशेषकर राजस्थान, गुजरात और हरियाणा जैसे शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में मार्च से जून तक की गर्मी फसलों के लिए तनावपूर्ण होती है। इस परिस्थिति में किसान ऐसी फसलों की खोज करते हैं जो कम पानी में, कम समय में तथा अधिक ताप सहनशीलता के साथ लाभकारी उत्पादन दे सकें। मूंग और लोबिया ऐसी ही दलहनी फसलें हैं, जो ज़ायद मौसम में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं और रबी व खरीफ के बीच किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करती हैं। शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ भूजल स्तर गहरा है या नहरी पानी की उपलब्धता अनिश्चित रहती है, वहां डिग्गी या फार्म पॉन्ड (खेत तलाई) ज़ायद खेती के लिए एक वरदान सिद्ध हो रहे हैं। वर्षा ऋतु के दौरान फार्म पॉन्ड में संचित जल का उपयोग किसान मार्च से जून के मध्य मूंग और लोबिया जैसी कम अवधि और कम पानी चाहने वाली फसलों के लिए 'जीवन रक्षक सिंचाई' के रूप में कर सकते हैं।

क्यों चुनें मूंग और लोबिया?

मूंग और लोबिया दोनों ही अल्पावधि की, गर्मी सहनशील तथा सूखा प्रतिरोधी फसलें हैं। ये लगभग 60–70 दिनों में तैयार हो जाती हैं, जिससे भूमि लंबे समय तक खाली नहीं रहती। इनके पौधों की जड़ों में राइजोबियम जीवाणु गांठें बनाकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मृदा में स्थिर करते हैं, जिससे खेत की उर्वरता बढ़ती है और अगली फसल को भी पोषण मिलता है। यही कारण है कि ये फसलें न केवल आर्थिक दृष्टि से लाभकारी हैं बल्कि टिकाऊ कृषि प्रणाली का भी आधार बनती जा रही हैं।

जलवायु एवं मृदा की अनुकूलता

ज़ायद मूंग एवं लोबिया के लिए 25 से 40 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। न्यून वर्षा वाले क्षेत्रों में भी ये अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं। इनके लिए बलुई दोमट या रेतीली दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है तथा pH मान 6.5 से 8.0 के बीच हो। जलभराव या अधिक लवणीय मिट्टी में इन फसलों की वृद्धि प्रभावित होती है, इसलिए खेत का समतलीकरण एवं जल निकासी की उचित व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है।

ज़ायद मूंग एवं लोबिया की वैज्ञानिक खेती :

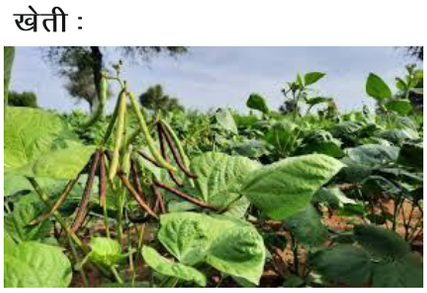

खेत की तैयारी

रबी फसल की कटाई के तुरंत बाद खेत की 2–3 जुताइयाँ कल्टीवेटर या रोटावेटर से करनी चाहिए ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाए। अंतिम जुताई के समय पाटा लगाकर खेत समतल कर लेना चाहिए जिससे नमी अधिक समय तक बनी रहे। यदि उपलब्ध हो तो 5–8 टन सड़ी गोबर खाद प्रति हेक्टेयर मिलाने से मृदा की भौतिक संरचना सुधरती है और पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है। जिन खेतों में दीमक के प्रकोप की संभावना हो, वहाँ अंतिम जुताई से पहले अनुशंसित कीटनाशी जैसे क्लोरोपाइरीफॉस 20 ईसी/2–5 लीटर प्रति हेक्टेयर को मिट्टी में मिलाया जाना चाहिए।

बुवाई का सही समय और विधि

ज़ायद मौसम में मूंग एवं लोबिया की बुवाई का सर्वोत्तम समय 1 से 15 मार्च तक माना जाता है। सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों में फरवरी के अंतिम सप्ताह से भी बुवाई प्रारंभ की जा सकती है। समय पर बुवाई से फसल की वृद्धि संतुलित रहती है, जबकि विलम्ब से बुवाई करने पर पुष्पन अवधि संक्षिप्त हो जाती है और उपज में लगभग 20–25 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। ज़ायद में अपेक्षाकृत अधिक बीज दर रखी जाती है। मूंग तथा लोबिया के लिए लगभग 12–15 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर उपयुक्त रहता है। बोआई से बीजों को कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज

1 विद्यावाचस्पति शोधार्थी, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर
2 प्रोफेसर, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

एवं थायरम 2–3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित करें, जिससे बीज एवं मृदा जनित रोगों से प्रारंभिक अवस्था में फसल सुरक्षित रहती है। इसके बाद बीजों को राइजोबियम कल्चर 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज तथा फॉस्फोबैक्टर से उपचारित करना चाहिए, जिससे जड़ों में अधिक गांठें बनती हैं, नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ता है तथा पौधे स्वस्थ एवं सशक्त विकसित होते हैं। उपचारित बीजों को छाया में हल्का सुखाकर शीघ्र ही बोआई कर देनी चाहिए।

कतार से कतार की दूरी 30–45 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी रखनी चाहिए। बीजों को 4–5 सेमी गहराई पर सीड ड्रिल अथवा देसी हल द्वारा बोना चाहिए, जिससे तेज गर्मी में भी अंकुरण अच्छा हो सके। बोआई के बाद खेत को हल्का समतल करना नमी संरक्षण के लिए लाभकारी होता है और पौधों की समान बढ़वार सुनिश्चित करता है।

मूंग की उन्नत किस्में

मूंग की सफल खेती में उपयुक्त किस्मों का चयन क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार करने से उत्पादन स्थिर एवं अधिक लाभकारी बनता है। राजस्थान के बीकानेर क्षेत्र में एमएच–421 एवं विराट किस्में उच्च ताप सहनशील एवं शीघ्र पकने वाली हैं, जो खरीफ के साथ–साथ जायद में भी अच्छा प्रदर्शन करती हैं इसलिए बीकानेर एवं आसपास के शुष्क क्षेत्रों के किसान इन्हें ज़ायद में भी अपनाकर बेहतर उपज प्राप्त कर रहे हैं। इन किस्मों का बीज राष्ट्रीय बीज परियोजना, एसकेआरएयू, बीकानेर से प्राप्त किया जा सकता है।

राजस्थान में शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मूंग किस्में

क्र.सं.	किस्म (Variety)	अवधि (दिन)	मुख्य विशेषताएँ एवं सिफारिश
1.	विराट (IPM 205–7)	52–55	अति शीघ्र पकने वाली, उच्च तापमान सहनशील, पीला मोजेक (YMV) प्रतिरोधी। देरी से बुवाई के लिए सर्वोत्तम।
2.	एम.एच. 421 (MH 421)	60–62	फलियां एक साथ पकती हैं और चटकती नहीं (Non-shattering) हैं। सिंचित क्षेत्रों और आलू–गेहूं फसल चक्र के लिए उपयुक्त।
3.	आई.पी.एम. 02–3	60–65	पीला मोजेक रोग प्रतिरोधी, आकर्षक चमकीले दाने, फलियां गुच्छों में लगती हैं।
4.	एस.एम.एल. 668	60–65	बड़े आकार का दाना, थ्रिप्स और गर्मी के प्रति सहनशील। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के लिए अनुशंसित।
5.	पूसा विशाल	70–75	अगेती और मध्यम अवधि, आकर्षक बड़ा दाना, यलो मोजेक वायरस के प्रति मध्यम प्रतिरोधी।
6.	आर.एम.जी. 492	65–70	कम पानी और बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, मध्यम कद, सूखा सहनशील।

राजस्थान में शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त लोबिया किस्मे

क्र.सं.	किस्म (Variety)	अवधि (दिन)	प्रकार	मुख्य विशेषताएँ एवं सिफारिश
1.	आर.सी. 101 (RC 101)	60–65	दाना	राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों के लिए विशेष विकसित, कम पानी में स्थिर उपज, दाने का आकार मध्यम।
2.	काशी कंचन (VRCP–4)	50–55	सब्ज़ी	अति शीघ्र (Extra early), झाड़ीदार पौधा, फलियां लंबी और मुलायम। बाज़ार में सब्जी बेचने हेतु उत्तम।
3.	पूसा कोमल	60–65	सब्ज़ी	बैक्टीरियल ब्लाइट प्रतिरोधी, फलियां हल्की हरी और बेलनाकार, सब्जी हेतु बहुत लोकप्रिय।
4.	आर.सी. 19 (RC 19)	60–65	दाना/चारा	जल्दी पकने वाली, गर्मी सहनशील, दाने और चारे दोनों के लिए उपयुक्त (द्वि–उद्देशीय)।
5.	जी.सी. 3 (GC 3)	60–70	दाना	झाड़ीदार पौधा, गर्मी के प्रति उच्च सहनशीलता, जायद मौसम में अच्छी पैदावार।
6.	पूसा फाल्गुनी	65–70	दाना/सब्ज़ी	विशेष रूप से ग्रीष्मकालीन (ज़ायद) खेती के लिए विकसित, झाड़ीदार किस्म।

उर्वरक प्रबंधन

मूंग एवं लोबिया की सफल खेती में संतुलित उर्वरक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। सामान्यतः प्रति हेक्टेयर 10–15 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40–50 किलोग्राम फास्फोरस, 20 किलोग्राम पोटाश तथा लगभग 20 किलोग्राम सल्फर की आवश्यकता होती है। उर्वरकों को बेसल डोज के रूप में अंतिम जुताई के समय अथवा बोआई के समय बीज से सीधे संपर्क में न रखते हुए बीज से लगभग 2–3 सेंटीमीटर नीचे एवं किनारे कूंड़ों में देना चाहिए। बिना मृदा परीक्षण अत्यधिक उर्वरकों का प्रयोग करने से उत्पादन लागत बढ़ जाती है और भूमि की उत्पादकता पर दीर्घकालीन प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, इसलिए संतुलित एवं वैज्ञानिक तरीके से उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन

ज़ायद में सिंचाई का विशेष महत्व होता है क्योंकि उच्च तापमान एवं तीव्र वाष्पीकरण के कारण मृदा शीघ्र शुष्क हो जाती है। ज़ायद मूंग की खेती में सामान्यतः पहली सिंचाई बोआई के लगभग 30 दिन बाद की जाती है। ज़ायद लोबिया में सामान्यतः 4–6 हल्की सिंचाइयाँ पर्याप्त रहती हैं। सिंचाइयों का अंतराल सामान्यतः 10–12 दिन रखा जाता है। पुष्पन पूर्व एवं फलियाँ भरने के समय खेत में नमी सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है।

खरपतवार नियंत्रण

ज़ायद मूंग एवं लोबिया की खेती

में प्रारंभिक 30 दिनों तक खेत को पूर्णतः खरपतवार मुक्त रखना अत्यंत आवश्यक होता है, क्योंकि इसी अवधि में फसल खरपतवारों से सर्वाधिक प्रभावित होती है। इसके लिए बोआई के 2–3 दिन के भीतर, अंकुरण से पूर्व, प्री–इमर्जेंस के रूप में पेंडीमेथिलीन 30 ईसी / 3.3 लीटर प्रति हेक्टेयर या एलाक्लोर 50 ईसी / 3 लीटर प्रति हेक्टेयर को 600–700 लीटर पानी में घोलकर छिड काव करना चाहिए। इसके बाद 20 एवं 40 दिन पर एक दो निराई–गुड़ाई से खेत में उगे खरपतवार नष्ट हो जाते हैं तथा मिट्टी में वायु संचार बढ़ता है।

रोग एवं कीट प्रबंधन

मूंग एवं लोबिया में पीला मोजेक रोग वायरस सफेद मक्खी के माध्यम से संचरित होता है। इन रोगों की रोकथाम के लिए समय पर बुवाई, रोगरोधी किस्मों का चयन तथा वाहक कीटों का नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। लोबिया में जीवाणु झुलसा से बचाव हेतु रोगरहित बीज का प्रयोग तथा ब्लाइटॉक्स (कॉपर ऑक्सीक्लोराइड) 0.2 % का छिड़काव प्रभावी रहता है, जबकि चूर्णी फफूंद रोग के नियंत्रण के लिए पेनकोनाजोल / 0. 25 ग्राम प्रति लीटर पानी का 7 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए। प्रारंभिक अवस्था में रस चूसने वाले कीटों के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल / 0.3 मिली/लीटर पानी या थायमेथोक्साम 25 डब्ल्यूजी / 0.25 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव प्रभावी रहता है। जब फसल में पुष्पन प्रारंभ होता है, तब फलीछेदक, नीली तितली एवं फूल थ्रिप्स का प्रकोप बढ़ जाता है।

इनके नियंत्रण हेतु स्पिनोसाड 45 एससी / 0.3–0.5 मिली/लीटर पानी या इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एसजी /0.4 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिए। जैसिड एवं एफिड्स के लिए प्रारंभिक अवस्था में डाइमेथोएट / 2 मिली/लीटर पानी का प्रयोग किया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर 12–15 दिन के अंतराल पर पुनः छिड़काव किया जा सकता है। समन्वित कीट प्रबंधन अपनाना अधिक लाभकारी एवं पर्यावरण–अनुकूल होता है। इसके अंतर्गत रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट करना, खेत में पीले चिपचिपे ट्रैप लगाना, नीम तेल 0.5–1.0% का छिड़काव करना, संतुलित उर्वरक प्रबंधन तथा स्वच्छ बीज का प्रयोग शामिल है।

कटाई, गहाई, उपज एवं भंडारण

मूंग एवं लोबिया की फसल की कटाई सही समय पर करना अत्यंत आवश्यक होता है। जब लगभग 80–85 प्रतिशत फलियाँ पककर काली अथवा भूरी होने लगें, तब फसल कटाई योग्य हो जाती है। कटाई के समय यदि फसल में हल्की नमी हो तो कटी फसल को खेत में 1–2 दिन धूप में सुखाना चाहिए। इसके बाद खलिहान में अच्छी तरह सुखाकर हाथ, बैल या हल्के ट्रैक्टर से गहाई (मड़ाई) करें, जिससे दाने टूटें नहीं। गहाई के बाद ओसाई द्वारा दाना एवं भूसा अलग कर लिया जाता है। वैज्ञानिक विधि से खेती के द्वारा जायद के मौसम में मूंग की लगभग 12–13 कुंतल प्रति हेक्टेयर एवं लोबिया में 10–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक दाने की उपज ली जा सकती है। वैज्ञानिक विधियों, समय पर सिंचाई तथा कीट–रोग प्रबंधन के साथ उपयुक्त किस्म एवं अच्छे प्रबंधन से उत्पादन और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

इसकी उत्पादन लागत लगभग 10–15 हजार रुपये प्रति हेक्टेयर आती है, जबकि 6000–8000 रुपये प्रति क्विंटल के भाव से बिक्री करने पर 25–40 हजार रुपये तक शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। भंडारण से पूर्व दानों को अच्छी तरह सुखाना चाहिए ताकि नमी 8–10 प्रतिशत से अधिक न रहे। भंडारण के लिए साफ–सुथरे बोरे या ड्रम का प्रयोग करें। कीटों से बचाव हेतु सूखी नीम की पत्तियाँ मिलाना सुरक्षित एवं लाभकारी उपाय है।

भारत सरकार और राज्य सरकारें दलहन उत्पादन में देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए मिशन मोड में कार्य कर रही हैं। 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM)' के अंतर्गत किसानों को ज़ायद मौसम में मूंग और लोबिया की उन्नत किस्मों के बीज मिनी–किट (Seed Minikits) निःशुल्क या भारी अनुदान पर उपलब्ध कराए जाते हैं, ताकि किसान प्रमाणित बीजों तक पहुँच बना सकें। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा दलहनी फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) में निरंतर वृद्धि की जा रही है और 'प्रधानमंत्री अन्नदाता आय संरक्षण अभियान' (PM&AASHA) के तहत नेफेड (NAFED) एवं राजफेड जैसी एजेंसियों द्वारा समर्थन मूल्य पर उपज की खरीद सुनिश्चित की जाती है। कृषि विभाग द्वारा सूक्ष्म सिंचाई संयंत्रों (फव्वारा/ड्रिप) और जैव–उर्वरकों पर भी अनुदान दिया जा रहा है।

मई माह के कृषि कार्य

डॉ. एन. के. शर्मा, निदेशक अनुसंधान
स्वा. के. रा. कृ. वि., बीकानेर

सस्य विज्ञान

देशी तथा नरमा कपास :– बुवाई का उपयुक्त समयः—देशी कपास की बुवाई का उपयुक्त समय अप्रेल माह है परन्तु मई माह के प्रथम सप्ताह तक भी बुवाई की जा सकती है। विलम्ब से की गई बुवाई से फसल की उपज में कमी पाई गई है। नरमा की बुवाई का उपयुक्त समय 1 मई से 20 मई है।साधारणतया मई माह में बुवाई कर सकते हैं। **बीज की मात्राः**— देशी कपास 3.00 किलोग्राम तथा नरमा में 4.0 किलोग्राम बीज प्रति बीघा काम में लेवे। बी.टी. कॉटन की बीज दर 400 ग्राम प्रति बीघा रखें। **खाद एवं उर्वरकः**—देशी कपास तथा नरमा में गोबर की खाद 2–3 टन प्रति बीघा के हिसाब से बुवाई के लगभग एक माह पूर्व डालकर जुताई कर मिट्टी में मिला देवें। देशी कपास में 22.5 किलोग्राम नत्रजन एवं 5 किलोग्राम फास्फोरस प्रति बीघा काम में लें। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बिजाई के समय काम में लें। नरमा के लिये 25 किलोग्राम नत्रजन तथा 10 किलोग्राम फास्फोरस प्रति बीघा डालें। **उपयुक्त किस्मेंः—देशी कपासः**— आर. जी.–8, आर.जी.–18 तथा आरडीएच.–9, एच. डी. – 123, आर. जी. – 542 **नरमाः**— आर.एस.टी.–9,, आर.एस..–2013, आर.एस..–810, राज एच एच–16 तथा बीकानेरी नरमा हैं। बी. टी. कॉटन की प्रमुख किस्में – एमआरसीएच – 6304, 6025, आरसीएच0 – 314, 134, जेकेसीएच – 1947 है।

बिजाई की विधिः— देशी कपास की बिजाई कतारों में 67.5 से. मी. पर तथा पौधे से पौधे की दूरी 20–25 से.मी. रखें नरमा की बिजाई 67.5 से.मी. पर कतारों में करें। बी.टी कॉटन की बुवाई 108 सेमी x 60 सेमी पर करें। गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें जिससे सूर्य की तेज किरणें भूमि के अन्दर प्रवेश कर जाती है। जिससे भूमिगत कीटों के अण्डें, शंकु, लटें एवं वयस्क नष्ट हो जाते है।

पौध व्याधि

नरमा एवं कपासः—ब्लेक आर्म रोग (जीवाणु अंगमारी):— इस रोग का प्रकोप इस फसल में मई माह में दिखाई पड़ सकता है। **लक्षणः**— यह रोग जेन्थोमोनास मालवेसियेरम नामक बैक्टीरिया द्वारा होता है। सबसे पहले अंकुरित बीज–पत्रों की निचली सतह पर छोटे जलीय धब्बे बनते है जो धीर–धीरे बढ़कर अनियमित आकार के धब्बे बनाकर बीज–पत्रों को सुखाकर नष्ट कर देते है। इन धब्बों का रेंग भूरे से काला हो जाता है। यह बीज–पत्रों को ग्रसित करने के बाद तने को ग्रसित करता हुआ पौधों की वर्धन–शिखा तक पहुँच जाता है। जिससें पौधे सूख जाते हैं। उग्र संक्रमण से तने पर गहरी काली दरारे पड़ जाती है एवं शाखाओं का रंग काला हो जाता है। **नियंत्रणः**— इस रोग के नियन्त्रण हेतु 4 किलो बीज को 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या 10 ग्राम प्लाटोमाईसिन को 10 लीटर पानी का घोल बनाकर बीज को 2 घण्टे तक भिगोये, जिन खेतों में जड़ सड़न की समस्या है उनमें बीज को 2 ग्राम बाविस्टिन/कि.ग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित करके बोये। इस रोग के लक्षण दिखलाई पड़ते ही 100 मि.ग्रा. स्ट्रेप्टोसाइक्लिन तथा 3 ग्राम कॉपरऑक्सीक्लोराइड – 50 को प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सब्जीः— कुष्माण्डकुल की सब्जियॉः— कद्दू, लौकी, ककड़ी, टिण्डा, तोरई, करेला आदि प्रमुख है।

प्रमुख रोग एवं रोकथामः—<u>तुलासिता रोग</u> (डाउनीमिल्डयू):— फफूंद–स्यूडोपेरोनोस्पोरा क्यूबेन्सीस। रोकथाम हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम/लीटर पानी के हिसाब से लक्षण दिखते ही छिड़काव करें।

2. **<u>झुलसा रोग</u>**:— फफूंद–अल्टरनेरिया कूकूमेरिना। रोकथाम हेतु मेंकोजेब या जाइनेब का 2 ग्राम/लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
3. **<u>छाछिया रोग</u>**:— फफूंद–ऐरीसाइफी साइकोरेशियम। रोकथाम हेतु रोग के प्रथम लक्षण दिखाई पड़ते ही केराथियॉन एल.सी. नामक दवा का 1 मि.ली./लीटर पानी के घोल का छिड़काव करे।
4. **<u>विषाणु रोग/मोजेक रोग</u>**:— यह रोग सी.एम.वी. द्वारा फैलता है। रोग का प्रसारण एफिड एवं सफेद मक्खियों द्वारा होता है। रोगी पत्तियों पर पीले धब्बे पड़ जाते है पत्तियॉ सिकुड़कर तथा फल आकार में टेढ़ेमेढ़े हो जाते है।
   <u>रोकथाम हेतु</u> – इस रोग के नियंत्रण हेतु बुवाई से पुर्व नीम की खली भूमि में मिलाकर पौध रोपण करें। खड़ी फसल में स्पाईरोमेसीफेन 22.9 ई. सी. एक मिली लीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। यह छिड़काव 15 से 20 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार दोहरायें।
5. **<u>जिवाणु पत्ती धब्बा रोग</u>**— जेन्थोमोनास कम्पेस्ट्रीस कूकरवीटी नामक बेक्टिरिया द्वारा फैलता है। <u>रोकथाम</u> हेतु स्ओप्टोसाइक्लिन 200 मिली ग्राम या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम एवं स्ओप्टोसाइक्लिन 100 मिली ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तर से करें।

भिण्डी पीत शिरा मोजेक रोगः— विषाणु जनित रोग का संचारण एवं प्रसारण सफेद मक्खी कीट करती है। पत्तियों की शिरायें पीली होकर, मुरझा जाती है। रोकथाम हेतु — फूल आने से पूर्व तथा फूल आने के बाद मिथाइल डेमेटोन 1 मि.ली. /लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें। **जड़ गलन रोगः**— रोग के कारण पौधों की जड़े काली पड़ कर सड़ जाती है। रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम या टोपसीन एम. 2 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करें। **मूलग्रन्थि (सूत्रकमि रोग):**— इसके कारण पौधों की जड़ों में गांठे बन जाती है। पौधे पीले पड़ जाते है तथा बढ़वार रुक जाती है। रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व नीम की खली का प्रयोग करें।

ग्वार (सब्जी):—जड़ गलन रोगः— रोग के कारण पौधों की जड़े काली पड़कर सड़ जाती है तथा पौधा छोटी अवस्था में ही मर जाता है। रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किलो या ट्राईकोडर्मा हरजिएनम + स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस (4+4) ग्राम/किलो बीजदर से उपचारित करें। भूमि उपचार हेतु (ट्राईकोडर्मा हरजेएनम + स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस) 1.25 + 1.25 किलो को 50 किलो गोबर की खाद में अलग—अलग मिलाकर प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व भूमि में मिलायें। अंगमारी एवं झूलसा रोग की रोकथाम हेतु बुवाई पूर्व प्रति किलोग्राम बीज को 250 पी.पी.एम. एग्रीमाइसीन या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन के घोल में 2 घण्टे भिगोकर उपचारित करें। खड़ी फसल में लक्षण दिखाई देते ही 2.5 ग्राम स्ट्रेप्टो साइक्लिन एवं 30 ग्राम कॉपर ऑक्सिक्लोराइड प्रति 10 लीटर पानी अथवा 2 ग्राम कॉपर ऑक्सिक्लोराइड व 2 ग्राम मेंकोजेब को छिड़काव से आधा घण्टा पूर्व मिलाकर छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर एक बार दोहरायें।

फल वाले पौधे एवं रोकथामः—

निम्बूः—कैंकर रोग— जेन्थोमोनास नामक जीवाणु से फैलने वाले इस रोग से पत्तियो, टहनियों व फलों पर भूरे रंग कि मध्य से खुरदरें एवं कार्कनूमा धब्बे बनते है टहनियों एवं शाखाओं पर लम्बे धब्बे बनते है। **रोकथामः**— रोपण से पूर्व कॉपरऑक्सीक्लोराइड — 50 को 0.3 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें। लक्षण दिखाई पड़ते ही स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 250 मि. ग्रा. एवं कॉपरऑक्सीक्लोराइड — 50 को 3 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर 20 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

कीट प्रबन्धः

नरमा व देशी कपास व मूंगफली—भूमि उपचारः— दीमक प्रभावित खेतों में पलेवा व जुताई पूर्व 6 किलो क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण प्रति बीघा की दर से खेत में दीमक की रोकथाम हेतु प्रयोग करें।

मूंगफली में बीजोपचारः— (1) जहॉ दीमक का प्रकोप हो वहां 3 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ई.सी. प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से मूंगफली की गुली को उपचारित करें।

(2) जहां सफेद लट का प्रकोप हो वहां फिप्रोनिल 5 एस सी 5 ग्राम या क्लोथाइलिडिन 50 डब्ल्यू.जी. 2 ग्राम या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 3 मि.ली प्रति किलोग्राम गुली को उपचारित करें।

नोंटः— जहॉ भूमि उपचार नहीं किया गया हो वहां बीजोपचार अवश्य करें।

उद्यानिकी कार्यक्रम :—

फलोद्यानः— फल वृक्षो में गर्मी की तीव्रता को ध्यान में रखते हुये 7—10 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें। इसके अतिरिक्त इस माह में बेर में मुख्य रुप से कटाई—छंटाई का कार्य करें, क्योंकि इसकी पत्तियों के कक्ष में प्ररोह निकलते है। उन्हीं पर फूल व फल लगते है। इस माह बेर के पौधे/वृक्ष सुषुप्तावस्था में रहते है। अतः मई के द्वितीय या तृतीय सप्ताह में कटाई—छॅटाई कर देनी चाहिये ताकि अधिक से अधिक नये प्ररोह निकल सके। कर्तन करते समय अनावश्यक शाखाओं को काट देवें तथा गत वर्ष की द्वितीय शाखाओं में 20 कलिकाऐं रखकर उनको काट दें। आमतौर पर 1/3 भाग हिस्सा हटा दें। अन्य फल वृक्षों में भी सूखी व रोगग्रस्त टहनियॉ काटकर हटा दें।

नींबू वर्गीय फल वृक्षों एवं अनार में फलों को गिरने से बचाने के लिये 2 मि.ली. प्लेनोफिक्स एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। ऑवला से अच्छा उत्पादन लेने के लिये 15 दिन के अन्तराल पर पानी का छिड़काव करें तथा 0.4 प्रतिशत बोरेक्स तथा 0.4 प्रतिशत केल्शियम कार्बोनेट को मिलाकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें तथा इन सभी फल वृक्षों में सिंचाई की समुचित व्यवस्था करें।

सब्जी उत्पादनः— इन दिनों प्रमुख रुप से बैंगन, टमाटर, भिण्डी, चवला और कुष्माण्ड कुल की सब्जियॉ मुख्य रुप से उगाई हुई है। जिनमें सिंचाई का समुचित प्रबन्ध आवश्यक है। इस माह में सब्जियों में 3—5 दिन के अन्तराल से सिंचाई करें। इसके अतिरिक्त कीट एवं व्याधियों के प्रकोप से बचाव हेतु पौध—संरक्षण करें।

Printed and published by Dr. Deepali Dhawan on behalf of Nidesak Prasar Shiksha and Printed at M/s Kishan Enterprises, Magaram Colony, Outside Jassusar Gate, Bikaner and published at Swami Keshwanand Rajasthan Agricultural University, Bikaner, Editor : Prof. Rajesh Kumar Verma.